वर्तमान समाज और भगवान महावीर का अनेकान्त सिद्धान्त

श्रीचन्द चोरडिया

काल की दृष्टि में भगवान महावीर का जन्म क्षत्रिय कुण्डग्राम में लगभग २५०० वर्ष पूर्व हुआ था। महावीर ने जो दिया उसमें आज भी समाधान देने की क्षमता है। महावीर ने जिन सिद्धान्तों की व्याख्या की उसमें गणतंत्रीय भावनाओं का स्पष्ट प्रतिबिम्ब है। जनतंत्र में पलने वालों के लिये वे नितान्त आवश्यक हैं। भगवान महावीर के मूलभूत सिद्धान्तों में अनेकांत सिद्धान्त भी एक है। इसी के द्वारा सत्ता का ज्ञान और उसका निरूपण होता है। यह सिद्धान्त वर्तमान समाज की रीढ़ है। कुछेक व्यक्ति सत्ता, अधिकार और पद से चिपट कर बैठ जाएँ, दूसरों की बात को सुनने का मौका ही न दें तो असंतोष की ज्वाला भभक उठती है। अपने पड़ौसियों के लिये संदिग्ध रहना भी खतरनाक है। इस जटिल समस्या को सामने रखते ही भगवान का अनेकांत सिद्धान्त सारण हो जाता है। महावीर की सीख को मानने वाला आक्रमणकारी नहीं हो सकता बल्कि अनेकांत सिद्धान्त से समन्वय की दृष्टि को उत्पन्न करने वाला होता है। राजनीतिक दलों और धर्म संप्रदायों को चाहिये कि वे एक दूसरे पर कीचड़ न उछालें। परस्पर विश्वास प्राप्त करें।

विभिन्नमतीय विवादों के कोलाहलपूर्ण एवं आग्रह भरे वातावरण में तत्व को समझने की सूक्ष्म दृष्टि भगवान महावीर ने दी, वह सचमुच ही मानवीय विचारधारा में एक वैज्ञानिक उन्मेष है। एक-अनेक, नित्य-अनित्य, जड़-चेतन आदि विषयों का एकांतिक आग्रह उनके सामने था। महावीर ने अपने चिंतन से इस विरोध की बुनियाद में मिथ्या-आग्रह पाया। वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है उस पर अनेक दृष्टियों से चिंतन किया जा सकता है, इसी दृष्टि का नाम अनेकांतवाद है। किसी एक धर्मी का एक धर्म की प्रधानता से जो प्रतिपादन होता है वह "स्यात्" (किसी एक अपेक्षा या किसी एक दृष्टि से भी, शब्द से होता है)। अतः अनेकांत की निरूपण पद्धति को स्याद्वाद कहा जाता है। दार्शनिक क्षेत्र में महावीर की यह बहुत बड़ी देन है।

जैन दर्शन का दार्शनिक क्षेत्र में बहुत बड़ा महत्व है। उसने आचार क्षेत्र में संसार को जिस प्रकार अहिंसा की एक मौलिक देन दी है उसी प्रकार विचारक्षेत्र में भी समन्वय के दृष्टिकोण को पुष्ट करने वाले अनेकांतवाद की देन दी है। इसके अनुसार कोई भी वस्तु एक स्वभाव वाली नहीं है। प्रत्येक वस्तु के अनेक स्वभाव होते हैं। अतः हम यदि उस वस्तु का पूरा बोध करना चाहेंगे तो यह आवश्यक होगा कि उसके सभी स्वभावों को जाना जाए। यदि हम संपूर्ण स्वभावों को नहीं जान पाते तो जितने स्वभाव जान पाये हैं उनके अतिरिक्त स्वभावों के होने की सम्भावना को स्वीकार करना चाहिये। तभी अनेकांतवाद की सार्थकता हो सकती है परस्पर विरुद्ध से दिखाई देने वाले स्वभाव भी वस्तु में जब अविरुद्ध रूप से पाये जाते हैं तब उन्हें स्वीकार करने का साहस अनेकान्तवाद ही दे सकता है। एकांतवाद तो अपने पूर्वाग्रह पर डटकर नये ज्ञान को अपने दरवाजे से घुसने नहीं देता। सत्यान्वेषी के लिये यह मार्ग उपयुक्त नहीं हो सकता।

अनेकांतवाद वस्तु के सभी गुणों तथा तद्विषयक सभी अपेक्षाओं को समान रूप से महत्व देने का दृष्टिकोण उपस्थित करता है। फलस्वरूप वह दूसरे दृष्टिकोण को भी महत्व देने का मार्ग जानता है। वह विभिन्न मंतव्यों में सहिष्णुता और उदारता का वातावरण बना कर उन सबके विचारों का समुचित समन्वय करने की सामर्थ्य रखता है। चींटी जिस प्रकार छोटे से छोटे अन्नकण को अपार धुलि कणों में से अलग चुनकर लेने का सामर्थ्य रखती है। उसी प्रकार उदार और सहिष्णु व्यक्ति के लिये अपार दुर्गुण राशि में पड़े हुए छोटे से छोटे सगुण को चुन लेना असहज नहीं रहता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेकांतवादिता की पावन धारा किसी के लिए बाधक नहीं बनती किन्तु सभी के लिये साधक बनती है।

विचारों का अनेकांतवाद जब आचार में उतरता है तब दर्शन क्षेत्र से वह व्यवहार जगत में आ जाता है। अनेकांतवाद जहां दार्शनिक तथ्यों को लेकर होने वाले वाद-विवादों और संघर्षों का अन्त करने में समर्थ है तो व्यवहार सरस बनाने में भी वह कम सफल नहीं है। वर्तमान समाज की बहुत सारी समस्याओं का समाधान इस अनेकांतवाद से हल हो सकता है-कौन व्यक्ति किस अपेक्षा से अपनी बात कर रहा है ? इतिहास साक्षी है कि एकान्तवाद ने वर्तमान समाज में हिंसा को प्रश्रय दिया है। हम दावे के साथ यह कह सकते हैं कि अनेकान्तवाद-स्याद्वाद के बिना व्यावहारिक जीवन जिया ही नहीं जा सकता। आग्रह, पक्षपात और एकांत दृष्टिकोणों के आधार पर सामुहिक जीवन कभी नहीं जिया जा सकता। आज जो परिवार, समाज, धर्म संस्थान, देश, राष्ट्र और अंतर्राष्ट्रों के परस्पर के जितने संघर्ष व मनोमालिन्य हैं-कटुता व तनावपूर्ण व्यवहार हैं, वे सारे असहिष्णुता प्रसूत हैं। परिपक्व अनेकांतवाद से अनाग्रह भाव फैलता है कि विचारों का अनाग्रह व्यवहार के तनावों को दूर करता है। अनेकान्तवाद-स्याद्वाद के चिंतन में तटस्थता रहती है। तटस्थ व्यक्ति दूसरों को समझने में प्रायः भूल नहीं करता और न वह आग्रह भाव से स्वयं का समर्थन व निराकरण ही करता है। एकांत दृष्टि से जो समस्या उलझ जाती है अनेकान्त दृष्टि से वह स्वतः समाहित हो जाती है।

तथ्यों को अनेक अपेक्षाओं और दृष्टिकोणों से देखने का मार्ग ही सही है। व्यवहार में अनेक घटनाएं घटती हैं, अनेक स्थितियां उभरती हैं। नाना वातावरण पनपते हैं उन सबको एक ही दृष्टिकोण से परखा जाय तो शायद सत्य की पूर्णता को नहीं पा सकेंगे केवल सत्यांश तक ही सीमित रहेंगे।

अनेकांतवाद की यह मौलिक विशेषता है कि वह सब तत्वों में समन्वय की खोज करता है। भिन्नता में अभिन्नता का दिग्दर्शन कराना ही अनेकांतवाद का लक्ष्य है। भगवान महावीर ने अपने सूक्ष्म चिंतन से जो अनेकांत सिद्धान्त दिया वह सचमुच ही अलौकिक और विलक्षण है। जैन दर्शन की मुख्य देन अनेकांतवाद है। महावीर ने वस्तु के पूर्ण स्वरूप को प्रकट करने के लिए प्रयास किये उन सब का फलित अनेकांतवाद की परिणति लेकर सामने आया। अनेकांतवाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु के अनेक स्वभाव होते हैं। यदि उस वस्तु का पूरा बोध करना हो तो यह आवश्यक है कि उसके सभी स्वभावों को जाना जाए। यदि समस्त स्वभावों की पूरी अवगति न हो सके तो अवगत स्वभावों के अतिरिक्त स्वभावों की अस्तित्व-सिद्धि की संभावना को मुक्त रखा जाये। इसी से अनेकांत सिद्धान्त सार्थक हो सकेगा। वर्तमान समाज में परस्पर विरुद्ध प्रतिभासित होने वाले स्वभावों का अस्तित्व जब वस्तु में विरुद्ध दृष्टिगोचर होने लगता है तब उसका स्वीकरण अनेकांत के माध्यम से ही हो सकता है। एकान्तवाद में पूर्वाग्रह होने के कारण सत्य वहां सुरक्षित नहीं रहता।

अनेकांतवाद हर वस्तु के हर स्वभाव को हर दृष्टिकोण से देखने को प्रेरित करता है। एक ही वस्तु के पूर्व और पश्चिम से खींचे गये दो विपरीत चित्रों की समस्थिति में यदि किसी प्रकार की असंगति नहीं होती तो विभिन्न विरुद्ध स्वभावों के अस्तित्व से किसी अन्य वस्तु या पदार्थ में अव्यवस्था कैसे हो सकती है ? एक ही व्यक्ति अपने पिता की उम्र की अपेक्षा छोटा और पुत्र की उम्र की अपेक्षा बड़ा कहा जाए तो किसे आपत्ति हो सकती है ? इसी प्रकार एक ही वस्तु में द्रव्य और पर्याय दृष्टियों की अपेक्षा भेद से नित्य-अनित्य, सामान्य-विशेष, एक-अनेक आदि विभिन्न स्वभावों का अस्तित्व भी आपत्तिजनक नहीं होगा। इसके विपरीत एकांतवाद किसी एक दृष्टि का ही समर्थन करता है। अतः इसका दर्शन सर्वथा अविरुद्ध नहीं है। भगवान महावीर का अनेकांतवाद समस्त मतवादों के समन्वय का मध्यम मार्ग है क्योंकि वह वस्तु सत्य से परिचित है।

तत्व को अनेक दृष्टिकोणों से देखना अनेकांत और उनका सापेक्ष प्रतिपादन करना स्याद्वाद है। सत्य अनंत धर्मा है। एक दृष्टिकोण से उसके एक धर्म को देखकर शेष अदृष्टधर्मों का खण्डन मत करो। वर्तमान समाज का दूसरा पक्ष सत्य भी हो सकता है, उसकी वार्ता को सुनो, चिंतन करो। एक ज्ञात-धर्म को ही सत्य और शेष अनंत धर्मों को असत्य मत कहो। सत्य की सापेक्ष व्याख्या करो। अपने विचार का आग्रह मत करो। दूसरों के विचारों को समझने का प्रयत्न करो। प्रत्येक विचार सत्य हो सकता है और प्रत्येक विचार असत्य हो सकता है। एक विचार दूसरे विचारों से सापेक्ष होकर सत्य होता है। एक विचार दूसरे विचारों से निरपेक्ष होकर असत्य हो जाता है अपने विचार की प्रशंसा और दूसरे के विचार की निन्दा कर अपने पांडित्य का प्रदर्शन मत करो।

भगवान महावीर का धर्म अनेकांतवादी रहा। इसलिये इतिहास के पृष्ठों में एक भी ऐसी घटना का वर्णन नहीं मिलेगा जिसमें उनके शासन पर चलने वाला समाज अथवा वर्ग ने कभी देश में साम्प्रदायिक आग लगाई हो और देश को संप्रदाय की भट्टी में झोंक दिया हो। भगवान महावीर ने विचारों में पूर्ण अनेकांतवाद को उतारने पर बल दिया। देश में साम्प्रदायिक उपद्रवों के पीछे हमारा एकान्तवादी दृष्टिकोण है। जिस प्रकार वृक्ष की डाल उसका भाग होते हुए भी उसे वृक्ष तो नहीं कह सकते हैं। इसी प्रकार वस्तु के एक पहलू को देख कर ही उसके पूरे गुणों से परिचित नहीं हो सकते। इसलिये अनेकान्त सिद्धान्त हमें किसी भी व्यक्ति एवं पदार्थ के विभिन्न गुणों को जानने का अवसर प्रदान करता है। महावीर के युग में ३६३ मतमतांतरों का प्रचार था। वे बात-बात में झगड़ा करते थे। न उनमें धार्मिक सद्भाव था और न वस्तुओं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को जानने की उदारता । इसलिये भगवान महावीर ने अनेकान्त दृष्टिकोण अपनाने पर बल देकर देश को साम्प्रदायिकता से बचा लिया। यह महावीर शासन की उल्लेखनीय सफलता कही जा सकती है।

अनेकान्त ने ऋजुता और अनाग्रह रूप साधना का पथ प्रस्तुत किया। महावीर ने कहा सत्य, उसे उपलब्ध होता है जो ऋजु है। तत्व-दृष्टाओं ने किसी भी समस्या को सुलझाने में एकांतिक आग्रह को स्थान नहीं दिया। संघर्ष, विध्वंस या विप्लव के द्वारा समस्याओं को सुलझाने का जो उपक्रम है वह वास्तविक सुलझाव नहीं है। वह तो उलझाव है क्योंकि उससे क्षणवर्ती सुलझन दीखती है। समन्वय, सामंजस्य व समझौता ही समस्याएं सुलझाने के प्रमुख आधार हैं जिसे हम जैन दार्शनिकों की भाषा में स्याद्वाद या अनेकान्त दृष्टि कह सकते हैं। एकान्तवाद मिथ्या है अनेकान्त यथार्थ सत्य निर्णय के लिए ज्ञान और वाणी दोनों में अनेकान्त की अपेक्षा है। एकान्त दोनों में बाधक है। चूंकि ज्ञेय स्वयं अनेकान्त है, एकान्त ज्ञान और वाणी उसके निर्णय में साधक नहीं बनते। भगवान महावीर ने आग्रह और अभिनिवेष के तात्कालिक रोग को दूर करने के लिये अनेकान्त का आविष्कार किया। जब ज्ञेय पदार्थ का स्वभाव भी अनेकान्तात्मक है उस स्थिति में अनेकान्त के सिवाय यथार्थ दर्शन का कोई भी मार्ग नहीं रह सकता। अनेकान्त का क्षेत्र व्यापक है वह वर्तमान समाज-समस्या का राजमार्ग है। एकांत से आग्रह बढ़ता है। आग्रह से असहिष्णुता बढ़ती है जिसका परिणाम समाधान कारक नहीं हो सकता। अनेकांत एक दृष्टि है, स्याद्वाद उसकी प्रतिपादन शैली है। भगवान महावीर ने[1] कहा—अस्याद्वाद पद्धति से नहीं बोलना चाहिये। विभाज्यवाद की पद्धति से बोलना चाहिए। स्याद्वाद के माने हैं – किसी विशेष अपेक्षा से कथन। जहां अपेक्षा नहीं रहती वहां एकांत होता है, आग्रह बढ़ता है। वस्तुतः आग्रह दृष्टि से यथार्थ निर्णय नहीं रुकता।

अनेकान्त-स्याद्वाद और एकान्तवाद में "भी" और "ही" का बहुत बड़ा विरोध है। आत्मा नित्य भी है, यह स्याद्वादी का निरूपण है "आत्मा नित्य ही है" यह एकान्तवादी का। भगवान महावीर ने एकान्तवादी को अनाचार कहा है-इस जगत को अनादि-अनन्त जान कर इसे एकान्त नित्य या अनित्य न माने।[2] एकान्त, नित्यवाद और एकान्त अनित्यवाद-इन दोनों पक्षों से व्यवहार नहीं चल सकता ये दोनों पक्ष अनाचार हैं। यद्यपि "स्यात्" शब्द के कथंचित्त्, संशय और कदाचित्त् तीनों अर्थ होते हैं पर स्याद्वाद में निर्दिष्ट स्यात् सिर्फ 'कथंचित्ते' का अर्थ लिये हुए है। वस्तुतः स्याद्वाद में विवक्षित अंश अनिश्चित नहीं रहता, वह अपनी अपेक्षा विशेष से बिल्कुल निश्चित रहता है।

अस्तु यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि अनेकान्त सिद्धान्त के प्रणेता भगवान महावीर समन्वय और सहअस्तित्व का दिव्य संदेश लेकर इस में संसार आये। वस्तु में अनेक आपेक्षित धर्म हैं उन सबका यथार्थ ज्ञान तभी हो सकता है जब अपेक्षा को सामने रखा जाए। दर्शनशास्त्र में एक, अनेक, वाच्य, अवाच्य तथा लोकव्यवहार में स्वच्छ-मलिन, सुक्ष्म-स्थूल आदि अनेक ऐसे धर्म हैं जो आपेक्षिक हैं इनका भाषा के द्वारा कथन उसी सीमा तक सार्थक हो सकता है जहाँ तक हमारी अपेक्षा उसे अनुप्राणित करती है। जिस समय जिस अपेक्षा से जो शब्द जिस वस्तु के लिये प्रयुक्त होता है उसी समय उसी वस्तु के लिए किसी अन्य अपेक्षा से अन्य शब्द की प्रयुक्ति भी तथ्यगत ही होगी, वह उतना ही अखण्ड सत्य होगा जितना कि पहला। निष्कर्ष की भाषा में कहा जा सकता है कि एक ही वस्तु के संबन्ध में ऐसे अनेक तथ्य होते हैं जो हमारे ज्ञान में सन्निहित हैं और एक ही समय में सब समान रूप से सत्य हैं फिर भी वस्तु के पूर्ण रूप की अभिव्यक्ति में उसकी विभक्ति करनी ही होगी।

वस्तु में जो अनेक आपेक्षिक धर्म हैं, उन सबका यथार्थ ज्ञान तभी हो सकता है जब अपेक्षा को सामने रखा जाए। वर्तमान समाज में पारस्परिक झगड़ों का एक मूल कारण यह भी रहा है कि दूसरों के सही दृष्टिकोण का अनादर करना। किसी वस्तु या पदार्थ में जो अपेक्षायें घटित होती हैं उनका स्वीकरण ही अनेकान्त का सिद्धांत है। एक अन्धे हाथी को लेकर छह अन्धे व्यक्तियों की तरह आग्रह दृष्टि छोड़े दूसरों के विचारों का भी समादर किया जाए। कभी-कभी गलत फहमियों से वर्तमान समाज की छोटी-छोटी घटनाएं विस्फोट का रूप धारण कर लेती हैं। यदि अहिंसामय अनेकान्त सिद्धांत का अपलवन लेकर वर्तमान के सामाजिक झगड़े सुलझाये जायें तो आसानी से सुलझ सकते हैं। शशकश्रृंग या गगन-पुष्प की अस्तित्व सिद्धि में अनेकान्त सापेक्ष नहीं है। अनेकांत तो केवल यथार्थता का प्रगटीकरण करता है, वस्तु का यथेष्ट परिवर्तन उसे अभीष्ट नहीं है।

प्रत्येक वस्तु और पदार्थ स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा से सत् और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव की अपेक्षा असत् है। इसे सहजतया समझा जा सकता है। वस्त्र स्वद्रव्य रूई की अपेक्षा सत् और परद्रव्य मिट्टी की अपेक्षा असत् है, क्योंकि वस्त्र, वस्त्र है मिट्टी नहीं। इसी प्रकार सत्-असत् के आपेक्षिक कथन के समान ही वस्तु में एक-अनेक, विधि-निषेध वाच्य-अवाच्य, आदि विभिन्न धर्मों की सत्ता विद्यमान है।

आज यह प्रायः देखा जाता है कि आत्मा की पकड़ की अपेक्षा शब्दों की अधिक पकड़ है। तत्वतः सत्य विशाल है और शब्द सीमित। सत्य की अभिव्यक्ति के लिये शब्द स्पष्ट होते हैं और उसको सीमित बना देते है। अनेकान्त दृष्टि की जगह, आग्रह सहित दृष्टि होने के कारण शास्त्र का कार्य नहीं कर पाते, प्रत्युत स्वयं समस्या बन जाते हैं। जो शास्त्र हमारी आंतरिकता से नहीं जुड़ पाते, वे बहुधा शस्त्र बन जाते हैं। आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यक भाष्य में अनेकान्त का विवेचन करते हुए लिखा है कि प्रत्येक प्रमेय में इसे लगाने की आवश्यकता है। स्याद्वाद भाषा का वह निर्दोष प्रयोग है जिसके द्वारा अनेकान्त वस्तु के परिपूर्ण

१. सूत्रकृतांग-१-४-१९.
२. सूत्रकृतांग-२-५-१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और सम्यक्रूप के अधिक से अधिक समीप पहुँचा देता है । सत्य के अनेक रूप हैं जैसे जो दृष्य है, वह सत्य है, पर वह भी सत्य है जो दृष्य नहीं है । जो स्थित है वह सत्य है पर वही सत्य नहीं है । जो परिवर्तनशील है वह सत्य है पर वही सत्य नहीं है। तत्वार्थ सूत्र में यह ठीक ही कहा है कि स्थिति के बिना परिवर्तन होता ही नहीं। एक रूप अनेक रूपता का अंश रह कर ही सत्य है । उससे निरपेक्ष होकर वह सत्य नहीं है। अस्तित्ववादी दृष्टिकोण से आत्मा भी सत्य है और अनात्मा भी सत्य है । उपयोगितावादी दृष्टिकोण से आत्मा ही सत्य है और सब मिथ्या है। आत्मा की परमात्मा बनने की जो साधना है वह हमारा उपयोगितावाद है। अष्टसहस्री में आचार्य विद्यानन्द ने पहला द्वैतवादी दृष्टिकोण और दूसरा अद्वैतवादी दृष्टिकोण माना है। भगवान महावीर खण्ड सत्य को अनन्त दृष्टिकोण में से देखने का सन्देश देते थे। अनेकान्त दृष्टि में अद्वैत भी उनके लिये उतना ही अग्राह्य था। जितना कि द्वैत। उसके विपरीत एकान्त दृष्टि से द्वैत भी उनके लिये उतना ही अग्राह्य था जितना कि अद्वैत । स्याद्वाद मंजरी में अद्वैत और द्वैत दोनों को एक सत्य के दो रूप माना है ।

अस्तु अनेकान्त की मर्यादा में सर्वथा भेद और सर्वथा अभेद का सिद्धांत सत्य नहीं है। जो भिन्न है वह किसी दृष्टि से अभिन्न होकर ही भिन्न है और जो अभिन्न है वह किसी दृष्टि से भिन्न होकर ही अभिन्न है। इस प्रकार भेदाभेद के सह अस्तित्व का सिद्धांत आम जनता अपना ले तो वर्तमान समाज के विचारों की गुत्थियाँ आसानी से सुलझ सकती हैं। वस्तुतः अभेद में भेद का विरोध न होना ही समन्वय है। आगमवाणी के अनुसार यह कहा जा सकता है कि जीव घात और मनोमालिन्य जैसे हिंसा है वैसे एकान्त दृष्टि या मिथ्या आग्रह भी हिंसा है। दृष्टि को ऋजु और सापेक्ष किये बिना वर्तमान समाज की वस्तुस्थिति का यथार्थ ग्रहण और निरूपण नहीं किया जा सकता। भगवान महावीर ने एकान्त आग्रह को सम्यग् दर्शन में बाधक बतलाया। जैन परम्परा में अनेकांतवाद के प्रति आस्था है, फिर भी किसी बिषय को लेकर एकांगी आग्रह क्यों रहा, यह वस्तुतः बड़ा प्रश्न है ? किसी स्थिति में कोई कार्य किसने किया, किसने बनाया, इन बातों का पूरा ज्ञान नहीं होता, तब वर्तमान समाज में आग्रह अधिक बढ़ता है। वर्तमान समाज में एकांगी आग्रह वहीं पनपता है । जहाँ स्थिति का सही अंकन नहीं होता और जहाँ एकांगी आग्रह होता है वहाँ भेद, अभेद में से नहीं निकलता है वह भेद में से ही उपजता है । मूल एक होने पर भी पोषण लेने और पचाने में अनेकता हो सकती है । वह अनेकता एकता में से निकलती है इसलिये दुःखदायी नहीं होती। आज जो अनेकता है वह एकता में से नहीं निकल रही है इसलिये वह दुःखदायी हो रही है ।

भगवान ने सत्य को अनेक दृष्टि से देखा और उसका प्रतिपादन स्याद्वाद की भाषा में किया । इसका हेतु भी समता की प्रतिष्ठा है। एकांत दृष्टि से देखा गया वस्तुतः सत्य नहीं होता। एकान्त की भाषा में कथित सत्य भी वास्तविक सत्य नहीं होता। सत्य अखंड और अविभक्त है। जो सत् है वह अनंत धर्मात्मक है। उसे अनंत दृष्टिकोणों से देखने पर ही उसकी सत्ता का यथार्थ ज्ञान होता है। इसलिये भगवान महावीर ने अनेकान्त दृष्टि की स्थापना की। दूसरे के सही दृष्टिकोणों का भी आदर करो । अनेकान्त दर्शन वस्तु विचार के क्षेत्र में दृष्टि की एकांगिता और संकुचितता से होने वाले मतभेदों को उखाड़कर मानसिक समता की सृष्टि करता है । इस अनेकान्त महोदधि की शांति और गंभीरता को देखो। मानस अहिंसा के लिये जहाँ विचार शुद्धि करने वाले अनेकांत दर्शन की उपयोगिता है वहाँ वचन की निर्दोष पद्धति भी उपादेय है क्योंकि अनेकान्त को व्यक्त करने के लिये ऐसा ही है। इस प्रकार की अवधारिणी भाषा माध्यम नहीं बन सकती। इसलिये उस परम अनेकान्त तत्व का प्रतिपादन करने के लिये स्याद्वाद रूप वचन-पद्धति का उपदेश दिया गया है। इससे प्रत्येक वाक्य अपने में सापेक्ष रह कर स्ववाच्य को प्रधानता देता हुआ भी अन्य अंशों का लोप नहीं करता । वह उनका गौण अस्तित्व स्वीकार करता है ।

अहिंसादि की दिव्य ज्योति विचार के क्षेत्र में अनेकान्त के रूप में प्रगट होती है तो वचन व्यवहार के क्षेत्र में स्याद्वाद के रूप में जगमगाती है। कहने का मतलब है विचार में अनेकान्त वाणी में स्याद्वाद तत्व की निरूपण पद्धति में इनका प्रमुख स्थान है। जैनेन्द्र व्याकरण में कहा है "सिद्धिरनेकांतात्" अर्थात् अनेकांत के द्वारा शब्दों की सिद्धि होती है। कालु कौमुदी में भी मुनि श्री चौथमलजी ने भी ऐसा ही कहा है। पदार्थ का विराट स्वरूप समग्रभाव से वचनों के अगोचर है। वह सामान्य रूप से अखण्ड मौलिक दृष्टि से ज्ञान का विषय होकर भी शब्द की दौड़ के बाहर है । केवल ज्ञान में जो वस्तु का स्वरूप झलकता है उसका अनंतवां भाग ही शब्द के द्वारा प्रज्ञापनीय होता है तथा जितना शब्द के द्वारा कहा जाता है उसका भी कुछ भाग श्रुतनिबद्ध होता है जिनमें यह आग्रह है कि मेरे द्वारा देखा गया वस्तु का अंश ही सत्य है, अन्य के द्वारा जाना गया मिथ्या है। वस्तुस्वरूप से पराङ्मुख होने के कारण उनकी कथनी मिथ्या और विसंवादिनी होती है। जैन दर्शन का आचार अहिंसामूलक, विचार अनेकान्त दृष्टिमूलक और भाषा स्वाद्वादमूलक है ।

लोक भाषा और व्यवहार में अनेकान्त सिद्धांत अर्थात् सापेक्ष कथन यह प्रकार जितना मौलिक और सत्य है उतना ही दर्शन जगत में भी। उपरोक्त आवास संबंधी ज्ञान में एकान्तवादिता सत्य से जितनी दूर ले जाती है उतनी तत्वज्ञान के सम्बन्ध में भी। अतः दर्शन और लोक व्यवहार दोनों ही क्षेत्रों में अनेकांत स्याद्वाद का प्रयोग न केवल उचित ही है किंतु अनिवार्य भी है ।

इस मानस अहिंसात्मक अनेकान्त सिद्धांत से विचारों या दृष्टिकोणों में कामचलाऊ समन्वय या ढीला ढाला समझौता नहीं होता किन्तु वस्तु स्वरूप के आधार से यथार्थ तत्वज्ञानमूलक समन्वय दृष्टि प्राप्त होती है। वह वर्तमान समाज की समस्याओं का समाधान सहज ही कर देता है । वह कभी भी वस्तु की सीमा

(शेष पृष्ठ ३३ पर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org